जनक हमारे विचार ही हैं अतएव हमारे विचार ही हमारे जीवन का रूप निर्दिष्ट करते हैं।

किन्तु आश्चर्य्य तो यह है कि लोग बारम्बार इस सिद्धान्त को भूल जाया करते हैं। न तो धर्मस्थानों में ही इसकी चर्चा होती है और न पुस्तकों में ही। इस प्रकार बीच-बीच में सैकड़ों वर्षों तक यह महासत्य गुप्त पड़ा रहता है और फिर समय पाकर एक-न-एक नये नाम से प्रकाशित हो जाता है। किन्तु वास्तव में यह सिद्धान्त नया नहीं है, वह सनातन है। ईसा से पाँच सौ वर्ष पहले भगवान बुद्ध ने भी इसी सत्य का स्पष्ट शब्दों में उपदेश किया था।

हमारे विचारों द्वारा हमारे जीवन का रूप निश्चित हुआ है। हमारी वर्तमान स्थिति हमारे विचारों का ही फल है। मन के बुरे विचारों का अनुसरण दुःख वैसे ही करता है, जैसे बैलगाड़ी के बैल का अनुसरण पहिया करता है। पुनः जैसे शरीर के पीछे छाया चलती है, उसी प्रकार पवित्र विचारों के पीछे सुख चलता है।

महात्मा ईसा ने भी ऐसा ही उपदेश दिया है। कुत्सित विचारों का अर्थ है—सत्यानाश और दिव्य विचारों का फल है—सुख और शान्ति।

एलेन ग्रन्थावली—संख्या

(THE MIGHT OF MIND)

अनुवादक—

पं० केदारनाथ शर्मा एम. ए.

प्रथम बार } रामनवमी सं० १९९१ वि० { मूल्य ॥)

अच्छा तो आप अपनी अमोघ विचार-शक्ति का प्रयोग भले ही कीजिये; पर ऐसा करने के पहले आप अपने हृदय की पर्याप्त परीक्षा कर लीजिये, अपने उद्देश्यों का विश्लेषण कर लीजिये और यह भली भाँति समझ लीजिये कि आप जिस वस्तु की कामना करते हैं वह वास्तव में कैसी है (अच्छी या बुरी)। आपकी काम्य वस्तु ऐसी होनी चाहिये जिसकी प्राप्ति से आपके चरित्र की दृढ़ता और उदारता बढ़े और आप अपने उन्नतिशील जीवन में ऐसे अवसर पावें जो आपको इस योग्य बनावें कि आप संसार के कल्याण में दत्तचित्त हों, अपने जीवन को भव्य बनावें और परमात्मा के दिव्य गुणों को प्रकाशित करें।

संयोग हो, चाहे नियति हो, चाहे भाग्य हो, किन्तु कोई भी शक्ति, उस मनुष्य के दृढ़ निश्चय का जो कर्मक्षेत्र में कमर कस कर उतर पड़ा है, न सम्मोहन कर सकती है, न विरोध कर सकती है और न नियमन कर सकती है। फलप्राप्ति का तो कुछ भी महत्व नहीं है; महत्व तो है दृढ़ इच्छा-शक्ति का। समय पाकर संसार की सभी बाधाएँ इसके आगे सीस झुका देती हैं। समुद्र से मिलने के लिये तीव्र वेग से बहने वाली महा-

शक्ति की महिमा का बारम्बार गान किया गया है और यह दिखलाया गया है कि यह शक्ति जीवन को सफल और उन्नत बनाने का अद्भुत और अचूक साधन है।

वास्तव में, विचार-शक्ति को व्यर्थ नष्ट न होने देना और उसका उचित सञ्चालन करना—कल्याणमार्ग पर अग्रसर होना है। अतएव यदि इस अनुवाद से पाठकों का कुछ भी उपकार हुआ तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा।

शुभम्

विनीत—

केदारनाथ शर्मा

प्रकाशकीय

सुप्रसिद्ध लेखक महात्मा जेम्स एलेन की पुस्तकों का पाश्चात्य देश में बड़ा सम्मान है। इनकी पुस्तकों की सबसे बड़ी विशेपता यह है कि इन्होंने जीवन के गूढ़तम रहस्यों एवं सूक्ष्म विपयों को अपनी छोटी-छोटी पुस्तकों द्वारा बड़ी सरल रीति से समझाया है।

कई वर्ष से हमारी यह हार्दिक अभिलापा थी कि हिन्दी भापाभापी जनता के लाभार्थ जेम्स एलेन की समस्त पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जाय। परन्तु कतिपय कारणों से हम इस परमोपयोगी कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने में कृतकार्य न हो सके।

वड़े हर्प की वात है कि परमात्मा की महती अनु-कम्पा से अब हमें एलेन ग्रन्थावली के प्रकाशन को प्रारम्भ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह मनोबल नामक प्रथम पुस्तक आप लोगों के सम्मुख उपस्थित है। हम आशा करते हैं कि इस लेखक की सुन्दर कृतियों का समादर करके आप लोग हमें इनकी पूरी ग्रन्थावली शीघ्र प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेंगे।

विनीत—

प्रकाशक

विषय सूची

चुनी हुई शिक्षाप्रद पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
विनय पत्रिका	२॥) १॥)
तुलसी सूक्ति सुधा	२)
भूषण ग्रन्थावली	२)
केशव की काव्यकला	१॥।)
परिषद् निबन्धावली	१)
भाषाभूषण	॥=)
हिन्दी दासबोध	२।) २)
भक्त और भगवान	१॥)
व्यवहार शास्त्र	१)
भगवान की लीला	॥।) ॥)
भक्ति और वेदान्त	॥।=)
ठंडे छींटे	॥)
दानलीला	।-)
सुदामा चरित्र	।)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	।-)
मधुप !	॥)
भावना	॥=)
झरना	।=)
रेलवे थर्ड क्लास	॥)
रूपनगरकी राजकुमारी	३॥) ३)
कर्तव्याघात	२॥।) २।)
प्रणय	२)
काला पहाड़	२॥।) २।)
संदिग्ध संसार	३)
अन्ना	३)
पेरिस का कुबड़ा	३)
शक्ति	२॥)
आँखों देखा महायुद्ध	२॥)
मिलन मन्दिर	२॥)
सन्ध्या	२।)
कमला	२)
संघर्ष	२)
वे तीनों	२)
बी. ए. की बर्बादी	२)
नवाब साहब का हाथी	१॥)
महाकवि चच्चा	१)
अपराधिनी	१॥)
अन्धकार	१॥)
दीपमालिका	१॥)
जीवन मरण	१॥)
मीठी चुटकी	१।)
स्त्री का हृदय	१।)
ऊषा और अरुण	१)
दीवानगंगागोविन्दसिंह	१।) ॥)
बेचारी माँ	१।)
उर्मिला	१।)

नरपशु	१)
प्रेम चक्र	१)
टानियाँ	१)
आर्यपथिक लेखराम	१)
मुन्नी की डायरी	१)
मेरी हजामत	॥।)
मगन रहु चोला	॥।)
आदर्श हिन्दू नारी	॥।)
जीवनधारा	॥।)
कार्लमार्क्स	॥।)
निर्मला	॥।)
धूपदीप	॥)
काम शास्त्र	४)
कामदर्शन	३)
आरोग्य विज्ञान	२)
वनस्पति शास्त्र	१॥)
प्राकृतिकचिकित्सारहस्य	१॥)
सन्तान विज्ञान	१।)
नारी धर्म शिक्षा	१।)
ब्रह्मचर्य की महिमा	१)
सुखी जीवन	१)
ब्रह्मचर्य जीवन	॥।)
भोजन ही अमृत है	॥।)
दीर्घ जीवन की कुञ्जी	॥।)
स्वप्नदोष रक्षक	॥)
कविराजी गृह चिकित्सा	।)
स्नान चिकित्सा	।)
छात्र चिकित्सा	≤)
स्वास्थ्य का सुगम मार्ग	।)
स्वास्थ्य पथ प्रदर्शक	।-)
किरातार्जुन युद्ध नाटक	॥।)
पतिभक्ति	॥।)
आँख का नशा	॥।)
सावित्री सत्यवान	॥।)
करालचक्र	॥≤)
अधर्म का अन्त	॥।)
हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ	१॥)
ज्ञान की पिटारी	१)
आविष्कार की कहानियाँ	॥।)
शेर बच्चों का खेल	॥≤)
लखपती कैसे बना	॥)
अंगूर के गुच्छे	।≤)
फुर फुर फुर	।≤)
देश की सैर	।)
बाल मनोरञ्जन	।)
चटपटी कहानियाँ	।-)
सती दमयन्ती	।)
नारी शिक्षा दर्पण	।)
शरारती बन्दर	≤)
अन्धेर नगरी	≤)

मिलने का पता—गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी।

मनोबल

१

कोई व्यक्ति जब ईश्वर की प्राप्ति के लिये अग्रसर होता है, उस समय जो महा कठिनाइयाँ सामने आती हैं, उनमें एक यह भी है कि मन को कैसे वश में किया जाय। यह कितना दुस्तर और कठिन कार्य है, यह वही लोग समझ सकते हैं जिन्होंने इसके करने का कभी प्रयत्न किया है। हमारा मन कितना अनियन्त्रित है, कितना स्वच्छन्द

मनोनिग्रह

है, उसमें नाना प्रकार की विचार-तरङ्गे किस प्रकार बेरोक-टोक उठा करती हैं और उसमें कितनी सुगमता से विविध कल्पनाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं—यह सब हम तभी समझते हैं, जब हम अपने बिचारों को नियन्त्रित करने का प्रयत्न करते हैं। हमें यह सोचते हुए बड़ी लज्जा होती है, बड़ा विस्मय होता है कि हमने अपना ऐसा बहुत-सा बहुमूल्य समय लक्ष्य-हीन और चञ्चल विचारों में खो दिया है जिसका सदुपयोग कर, जिसको किसी अभीष्ट की प्राप्ति में लगाकर, हम अपने को समृद्ध और चरित्रवान् बना सकते थे—जिसको हम ऐसे विचारों में लगा सकते थे, जो हमारे जीवन को उदार और हृदय को पवित्र बना देते और जो हमारे प्रभाव को बढ़ाते हुए हमको महान् आत्मिक बल देते।

मेरा तो विचार है कि जिस दिन किसी को उपरोक्त सत्य का पता लग जाय, वह दिन उसके जीवन का एक परम महत्वपूर्ण समय है।

पहले तो मन वश में आना ही नहीं चाहता। वह एक नये तरुण तुरङ्ग के समान है जो लगाम नहीं लगाने देता और स्वच्छन्द रहना चाहता है। किन्तु यदि विचारों को वश में करने में हम कुछ सफलता

चाहते हैं तो हमें बड़ा धैर्य्य रखना चाहिये और अपने भागते हुए चञ्चल विचारों को पुनः, पुनः और पुनः पीछे खींच लाना चाहिये। बारम्बार हम खिन्न चित्त होंगे, बारम्बार हमारा उत्साह भंग होगा, निराशा के कारण प्रयत्न छोड़ देने की भी इच्छा होगी; पर प्रयत्न छोड़ देने से अपनी ही हानि होगी।

सबसे पहले हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि मनोनिग्रह करने में धैर्य्य की बड़ी आवश्यकता है। जल्दी करने से किसी रूप में कोई लाभ नहीं हो सकता। जल्दी मचाकर विफल होने की अपेक्षा धीरे-धीरे चलकर सफल होना अच्छा है। इसलिये प्रारम्भ में ही अत्यधिक सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न मत करो और न चित्त को स्थिर करने में ही अत्यधिक समय लगाओ, नहीं तो अनभ्यस्त होने के कारण मस्तिष्क थक जायगा और उस सुन्दर कार्य्य के अयोग्य हो जायगा जो उसे करना है। यह मनोनिग्रह का कार्य वस्तुतः सुन्दर है, चाहे हम सुन्दर शब्द को किसी भी अर्थ में क्यों न लें; क्योंकि जब तक मनुष्य अपने मस्तिष्क की शक्तियों पर विजय नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह वास्तव में मनुष्य ही नहीं है।

अभ्यास आरम्भ करने की एक अच्छी रीति यह है कि कोई विशेष समय अभ्यास करने के लिये निर्धारित किया जाय। सवेरे का समय अत्युत्तम है। प्रारम्भ में १० मिनट का और फिर २० मिनट का अभ्यास पर्य्याप्त है। एक सप्ताह के बाद समय को बढ़ाकर आधा घण्टा कर दो। इस प्रकार शनैः शनैः मन को एकाग्र करने का अभ्यास करो।

किसी एक शब्द को ले लेना और उस पर मन को स्थिर करना......अभ्यास करने की इस रीति को मैंने बड़ी चमत्कारपूर्ण पाया है। उदाहरण के लिये "सहानुभूति" शब्द को लीजिये। अब सहानुभूति के सौन्दर्य्य पर विचार कीजिये। उसमें सुख और शान्ति देने की कितनी गहरी शक्ति है और किस समय तथा किस प्रकार उसका प्रयोग करना चाहिये, इसपर विचार कीजिये—उसका विश्लेषण कीजिये। प्रत्येक दृष्टि से उसका मनन कीजिये। ऐसा करते समय सम्भवतः आप इस बात का अनुभव करें कि आपका मन किसी गौण विषय की ओर घूम गया है। आप सोचेंगे "अहा! यह गौण विषय भी तो बड़ा मनोहर है, चलो इसी पर विचार करें।" पर आपको ऐसा न

करना चाहिये। आप अपने मन को पुनः पीछे खींच लाइये और उसे उसी "सहानुभूति" शब्द पर ही स्थिर कीजिये और प्रयत्न कीजिये कि वह वहाँ से डिग न सके। दूसरे दिन यदि आपकी इच्छा हो तो आप कोई दूसरा शब्द चुन लें; हमारे जीवन व आचरण से उसका क्या सम्बन्ध है, इस पर पूर्णतया विचार करें। शब्दों से चलकर आप धीरे-धीरे सिद्धान्तों तक पहुंचेंगे और आपको शीघ्र ही मालूम होगा कि आपके प्रभात-चिन्तन का तत्व आपके नित्याचरण में आ गया है। सच पूछिये तो आपको मालूम भी न होगा और आपके प्रभात-चिन्तन का तत्व आपके नित्य जीवन का एक अङ्ग बन जावेगा। ऐसा होना अनिवार्य है, क्योंकि हम वही हो जाते हैं जिसपर हम गम्भीरता से विचार करते हैं।

मैंने एक दफा एक लड़की को देखा था जिसके लिये लिखना बड़ा कठिन था। लिखावट अच्छी न होने के कारण पाठशाला में उसे नित्य ही डाँट-फटकार सहनी पड़ती थी और शिक्षकों ने निराश होकर यही समझ लिया था कि उसकी लिखावट हमेशा ऊटपटाँग और भद्दी रहेगी। लड़की स्वयं भी पूर्णतया हतोत्साह

और निराश हो चुकी थी। संयोगवश छुट्टी के दिनों में वह अपने एक स्त्री मित्र के यहाँ रहने गई। उसकी सखी ने उसकी दुःख-कथा सुनकर कहा "अच्छा, यह तो बताओ कि तुम कैसा लिखना चाहती हो"। लड़की ने दुःखी मन से उत्तर दिया "अरे, मैं क्या बतलाऊँ? मैं तो घबरा गई हूँ। मुझे तो उन कापियों के देखने से भी घृणा है।"

उसकी सखी ने कहा "इस समय कापियों को जाने दो। मुझे तुम यह बतलाओ कि तुम्हें किसका लिखना खूब सुन्दर लगता है?"

लड़की ने तुरन्त कहा "मुझे तो अमुक लड़की का लिखना सुन्दर लगता है। क्या ही अच्छा हो यदि मैं वैसा ही सुन्दर लिख सकूँ। पर ऐसा होना सम्भव नहीं; क्योंकि मेरे शिक्षक कहते हैं कि मैं कभी अच्छा नहीं लिख सकती।"

सखी ने कहा "अच्छा देखो। मेरी बात मानो। तुम्हारे शिक्षकों ने तुम्हारी बुरी लिखावट के बारे में जो कुछ कहा हो वह सब भूल जाओ। अपनी सब कापियों को भी भूल जाओ और चिन्ता करना छोड़ दो। अब अपने मन को केवल उस सुन्दर लेख की ओर लगाओ

जिसकी तुम इतनी सराहना करती हो। उस लड़की के अक्षरों को बार-बार पढ़ो। ऐसा करते समय प्रत्येक सुन्दर घुमाव पर, प्रत्येक परिष्कृत विशेषता पर और प्रत्येक सर्वांगसुन्दर अक्षर पर पूर्ण ध्यान दो। जब कभी लिखने के लिये कलम उठाओ तो अपने मन में कहो कि यही मेरा आदर्श है और मैं भी ऐसा ही लिखना चाहती हूँ" दिन में कई बार उस सुन्दर लेख का चिन्तन करो। कल्पना करो कि तुम स्वयं भी वैसा ही लिख रही हो और उस आनन्द का भी काल्पनिक अनुभव करो जो तुम्हें उसी प्रकार का सुन्दर लेख लिखने में सफलता प्राप्त करने पर होगा।"

लड़की के अन्तःकरण में यह बात बैठ गई और उसे जँची भी खूब। उसने आदेश के पालन करने की प्रतिज्ञा की। परिणाम यह हुआ कि छुट्टी खतम होने पर जब वह पाठशाला गई तो उसका लिखना उसके शिक्षकों से भी अच्छा था। इस प्रकार उसकी कल्पना ने सत्य का रूप धारण किया। (एकाग्र चित्त में कितना वेग होता है और निश्चित आदर्श में कितनी शक्ति होती है वह इस साधारण किन्तु प्रभावशाली उदाहरण से भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है।)

जेम्स एलेन ने कहा है:—

"मनुष्य अपने विचारों की उच्चता और नीचता के कारण ही उच्च अथवा नीच अवस्था में रहते हैं। संसार उनके लिये उतना ही संकीर्ण और अन्धकार-मय है जितना वे उसे समझते है और वही संसार उनके लिये उतना ही विस्तृत और ज्योतिमय है जितना वे उसे समझते हैं। उनके चारों ओर की प्रत्येक वस्तु पर उनके विचारों का ही रंग चढ़ा हुआ है।"

जिस प्रकार उस लड़की को अच्छा लेख लिखने के लिये एक आदर्श की आवश्यकता थी, उसी प्रकार उन्नति करने के लिये हमारी आत्मा के सामने भी आचरण का एक आदर्श होना चाहिये जिसकी प्राप्ति के लिये वह अग्रसर हो। पहले हमें अपनी ही परीक्षा करनी चाहिये जिससे हम अपने को भली प्रकार जान सकें। मनुष्य के मन की गति बड़ी सूक्ष्म है और अपने को जान लेना उतना सरल नहीं है जितना पहले मालूम पड़ता है। फिर भी यदि हम यह थोड़ा भी समझना चाहते हैं कि मन को वश में करने का क्या मतलब है, तो हमें प्रारम्भ में अपने आप ही को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। हमें अपने प्रति खूब सतर्क होना चाहिये, अपने उद्देश्यों

की छान-बीन करनी चाहिये और अपनी इच्छाओं की परख करनी चाहिये। हमें अपने से बारम्बार पूछना चाहिये कि हमने ऐसी बात क्यों कही? हमने ऐसा काम क्यों किया? इत्यादि। दिन भर के बाद अथवा घंटे-घंटे भर पर सतर्क दृष्टि से पीछे देख कर हमें अपने प्रत्येक कर्म के औचित्य तथा अनौचित्य पर विचार करना चाहिये और यदि हमें अपने में कमी जान पड़े तो उसे स्वीकार करने में कभी न डरना चाहिये। यदि आप ऐसा करने के लिये तय्यार हैं तो नित्य प्रति थोड़ा सा समय आत्म-परीक्षा के लिये निकाल दीजिये जिसमें आप यह जान सकें कि आप क्या हैं और किस अवस्था में पड़े हैं? सत्य के पूर्ण प्रकाश में आत्मा की परीक्षा करने से आप कदापि न डरिये और उस परीक्षा का फल जो कुछ हो, उसे स्वीकार करने में आप तनिक भी न हिचकिये। याद रखिये कि आदर्श-प्राप्ति का अर्थ होता है आत्मोद्धार करना। अर्थात् हम अपने को जो समझते हैं, उससे वह हो जाना जो हम होना चाहते हैं। समस्त उच्चाकांक्षाओं का अर्थ ही यह होता है कि हमारी आत्मा किसी अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की अभि-लाषा करती है। अर्थात् हम हाथ बढ़ा कर किसी ऐसी

उत्तम वस्तु को अपनाना चाहते हैं जो हमें अभी तक मिली नहीं है। "जिन लोगों की दृष्टि किसी अप्राप्त आदर्श पर नहीं होती वे विनष्ट हो जाते हैं।"

इस प्रकार निष्कपट आत्मपरीक्षा और आत्म-तर्क से अपने को और अपनी अवस्था को भली प्रकार समझ कर हमें अपना आदर्श निश्चित कर लेना चाहिये और निरन्तर उसका चिन्तन करते हुए तथा मन को एकाग्र रखते हुए उस आदर्श को सर्वदा अपने सामने रखना चाहिये। अब यदि थक कर हम अपने आदर्श से विमुख न हुए तो दिन-दिन हम उसके निकट ही पहुंचते चले जायँगे। आदर्श की कल्पना हमारे मन में विराजमान रहेगी और फल यह होगा कि यही कल्पना हमारे सामने सत्य रूप में आ उपस्थित होगी।

२

इतो न किंचित् परतो न किंचित्
यतो यतो यामि ततो न किंचित् ।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित्
स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित् ॥

मनकी रचना-शक्ति

मनुष्य की विचार शक्ति ही उसके जीवन में आत्म-निर्माण का कार्य करती है। विचार करना ही आत्मनिर्माण करना है। इस दृष्टि से हमारा समस्त जीवन आत्मनिर्माण करने में बीता है और फिर भी इस रहस्य को हम नहीं जान सके हैं।

हमने समझ रक्खा है कि निर्माण-शक्ति—जो मनुष्य में परमात्मा का अंश होने से होनी ही चाहिये—

कोई विचित्र और दिव्य-शक्ति है जो हमें चिरकाल तक खोजने से ही प्राप्त हो सकती है। हमारी धारणा यह रही है कि यह शक्ति हमसे पृथक् है जिसे हम उद्योग द्वारा अपना सकते हैं। हम यह नहीं जानते कि वह शक्ति जिसकी हम खोज कर रहे हैं सदा से ही हमारे पास और हमारे ही में है और रहस्य केवल इतना ही है कि उचित संचालन और निर्दिष्ट लक्ष्य के अभाव में यह आत्म-शक्ति केन्द्रीभूत न होकर एक जलधारा के समान व्यर्थ प्रवाहित हो रही है और अपने कुछ-न-कुछ करते रहने के स्वभाव के कारण हमारे जीवन को लक्ष्य-हीन, उद्देश्य-हीन बनाती हुई हमारे अस्तित्व को निरर्थक बना रही है।

इतना ही नहीं, कभी-कभी—अनजान में ही—हमने स्वयं इस शक्ति का दुरुपयोग भी किया है। रोग, शोक, चिन्ता, विपत्ति, विषाद और वेदना को हम लोगों ने मानव-जीवन का अनिवार्य्य अंग मान लिया है और मन को इन्हीं सबों के चिन्तन में लगा कर विचार की निर्माण-शक्ति द्वारा इनको हमने वास्तव में अपने जीवन में सन्निविष्ट कर लिया है।

मन ही जीवन का निर्माता है—इस उक्ति की सत्यता को हम जितना अपना लेते हैं उतना ही उत्तम और वांछनीय वातावरण उत्पन्न करने वाली हमारी शक्ति बढ़ती है। इसके विपरीत यदि हमारा मन बिगड़े हुए घोड़े के समान वेग के साथ काम और क्रोध, भय और मोह की तरफ भागा जा रहा है तो वह इसी क्रिया के अनुरूप ही स्थिति भी उत्पन्न करेगा। काम से वेदना और रोग की उत्पत्ति होती है; क्रोध आत्मा में अशान्ति और शरीर में क्षोभ उत्पन्न करता है और जीवन को दुःख-युक्त बनाकर रोग और क्लेश का प्रत्यक्ष कारण बनता है।

एक जलधारा किसी पहाड़ी से नीचे गिर रही थी। अनेक शताब्दियों तक उस ऊँची पहाड़ी पर अपने उद्गम स्थान से निकल कर वह सिन्धु तक बहती रही, किन्तु उस जलधारा में छिपी हुई शक्ति का किसी को स्वप्न में भी भान न हुआ। एक दिन एक व्यक्ति ने, जो औरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान था इस बात पर विचार किया कि यदि उस जलधारा का उचित नियन्त्रण किया जाय तो बड़ी शक्ति उत्पन्न हो सकती है। उसने काम हाथ में लिया। उसने बाँध

बनवाये और जल-संग्रह करने के स्थान बनवाये; यन्त्र-गृह बनवाये और जल-चक्र भी। और तब कैसा आश्चर्यकारी परिवर्तन हुआ? वह क्षीण जल-धारा जो शताब्दियों से शनैः शनैः पहाड़ी से नीचे बह रही थी एक प्रबल शक्ति में परिणत हो गयी। यह शक्ति बड़े-बड़े यन्त्र-चक्रों को घुमा कर अन्न पीस कर लोगों के लिये आँटा तय्यार करने लगी। यह गहरे जलाशयों को भर-भर कर लोगों को प्रचुर जल देने लगी और वह उस प्रेरक शक्ति को वितरित करने लगी जिससे उत्पन्न होने वाली बिजली के प्रकाश से नगर के मार्ग और नागरिकों के भवन जगमगाने लगे। और यह सब इसीलिये सम्भव हुआ कि एक व्यक्ति ने अपनी विचार-शक्ति का किञ्चित् उपयोग किया।

सहस्रों व्यक्तियों ने उस जलधारा को देखा होगा, पर वे देख कर ही रह गये। अन्त में एक व्यक्ति ऐसा आया जिसने जल-धारा को देखा और साथ ही उसमें छिपी हुई शक्ति को, उसके उपयोग को और उससे होने वाले सुफल को भी देखा। उसने देखा कि शताब्दियों से महान सम्भावनायें पड़ी पड़ी इस बात की बाट जोह रही हैं कि किसी की दृष्टि उनपर पड़े। बस

अन्त में उसके मस्तिष्क में विचार द्वारा जो चित्र उत्पन्न हुआ वह कार्य्य में परिणत हो गया।

हमारी मानसिक शक्ति का प्रवाह भी, जीवन पर्वत से निकल कर उसी क्षीण जलप्रपात के समान, व्यर्थ नष्ट हो रहा है और यह इसी कारण कि हम स्वयं अपने में विद्यमान विचार शक्ति के महत्व को नहीं जानते। किन्तु अब समय ने पलटा खाया है। जहाँ-तहाँ जागृति हो रही है। लोग विचार करने लगे हैं, प्रश्न करने लगे हैं और ज्ञान की खोज करने लगे हैं। वे समझने लगे हैं कि उनमें और उनकी अन्तरात्मा में भिन्नता नहीं है। फल स्वरूप वे अपनी विचार शक्ति का उपयोग अपना जीवन आनन्दित और आलोकित बनाने में करने लगे हैं।

वे जीवन-सिन्धु में उस काष्ठखण्ड के समान नहीं पड़े हैं जिसे भाग्य और परिस्थिति रूपी तरंगें जहाँ चाहें वहाँ बहा ले जायँ। वे अपने भाग्य आप हैं। वे अपनी परिस्थिति के निर्माता भी स्वयं आप हैं। उनका अपनी विचारधारा पर पूर्ण अधिकार है; वे उसकी प्रवृत्ति इच्छानुसार बदल सकते हैं। वे उसको व्यर्थ नष्ट होने से रोक सकते हैं और उसे

प्रशस्त मार्गों में प्रवाहित कर सकते हैं। उन्होंने जीवन-निर्माण का रहस्य समझ लिया है। उन्हें अपने अन्दर एक ऐसी शक्ति का अनुभव हो रहा है जिसका उचित संचालन करने से उन्हें सारे सुख, सारी सम्पत्तियाँ और सारे गुण प्राप्त हो सकते हैं।

अहा ! जब किसी व्यक्ति को उपरोक्त सत्य का ज्ञान हो जाता है तो उसके जीवन में कैसे अद्भुत आनन्द का प्रादुर्भाव होता है ? हमें यह जान कर कितनी प्रसन्नता होती है कि हमारा जीवन उतना ही सम्पन्न और समृद्ध हो सकता है जितना औरों का। हमारे नेत्र खुल जाते हैं और हमें स्पष्ट दिखलायी पड़ता है कि हम हीन इसी कारण थे कि चारों ओर से वेग से आने वाली विश्वव्यापिनी कल्याण-परम्परा को हम ग्रहण नहीं कर सके। हमारे नेत्र निमीलित थे और इसी कारण हम इस कल्याण-परम्परा को देख न सके। हम यह निश्चित मानते हैं कि सूर्य्य की सञ्जीवनी किरणों का हम उतना ही अपरिमित और स्वच्छन्द उपभोग कर सकते हैं जितना और कोई व्यक्ति। हम यह भी समझते हैं कि सूर्य की किरणें सबके लिये हैं और उनसे जितना चाहे उतना ताप और प्रकाश ले

सकते हैं। जिस वायु के विना हम क्षण भर भी नहीं जीवित रह सकते, जिसे हम हमेशा स्वांस द्वारा ग्रहण करते रहते हैं—वह कहाँ से आता है—इसे भी हम नितान्त सामान्य वात समझते हैं और स्वप्न में भी इस पर विचार नहीं करते। पर्याप्त वायु स्वाँस लेने को मिल जाता है—इस लिये हम गम्भीर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं समझते हैं। इसी प्रकार हम नित्य भोजन करते हैं, नित्य पानी पीते हैं पर भोजन और पानी के अभाव या कमी का ख्याल हमारे मन में शायद ही कभी आता हो। हम समझते हैं कि सूर्य्य-रश्मि, पवन, भोजन और जल हमें पर्य्याप्त और प्रचुर परिमाण में प्राप्त है—चिन्ता की आवश्यकता क्या है?

अहा! यदि यह समझने के अतिरिक्त कि हम यथेष्ट परिमाण में वायु ग्रहण कर सकते हैं, अशेष सूर्य्य-रश्मि का उपयोग कर सकते हैं और निश्चित रूप से नित्य भोजन और जल पा सकते हैं; हम यह भी समझने लगें कि इसी प्रकार और इसी प्रचुर परिमाण में हम अशेप कल्याण और विभव के भी अधिकारी हैं तो हमें कैसा असीम हर्ष हो?

जिसकी हमारी आत्मा को आवश्यकता हो, जिसके लिये हमारा हृदय लालायित हो रहा हो, जिसके लिये हमारे हाथ प्रसारित हों, जिसे हमने अपना लक्ष्य बना रक्खा हो, उसकी प्राप्ति हमें होगी अवश्य—चाहे वह कुछ भी क्यों न हो ? वह मुझे मिल सकती है, आपको मिल सकती है और सबको मिल सकती है, और यदि हमारा जीवन पर्य्याप्त तथा गम्भीर, सत्य, उत्साहपूर्ण और उद्योगमय है तो उस वस्तु की छाप हमारे जीवन में प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट दिखलाई पड़ेगी।

"यदि अनन्य भाव से और सच्चे हृदय से तुम मेरी खोज करते हो तो तुम मुझे अवश्य पाओगे।

३

उपयोगिता की दृष्टि से मनुष्य के लिये विश्व में सबसे बड़ी शक्ति यही विचार शक्ति है।

रसायन

विचार से ही उन्नति होती है और विचार से ही अवनति। लोग समझते हैं कि शक्तिमान पुरुषों का आश्रय लेने से ही उनको समाज में महत्त्व और सम्मान मिले हैं, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सभी प्रकार की उन्नति, सभी

प्रकार की सच्ची शक्ति हमारे प्रत्यक्षीभूत विचारों का फल है।

"मनुष्य चाहे जैसा हो, पर है वह अपने ही विचारों का फल।" ऐसा शताब्दियों पहले किसी आचार्य्य ने कहा था। आश्चर्य्य है कि युग बीत गये पर अधिकांश मनुष्य इस ज्वलन्त सत्य के ज्ञान से वंचित ही रहे। उत्तराधिकार के सम्बन्ध में, परिस्थिति के सम्बन्ध में, वंशावली के सम्बन्ध में, वातावरण के सम्बन्ध में या अपने से बाहर रहने वाली किसी कल्पित शक्ति के विषय में, जिनको उसने अपने जीवन और स्वभाव का तथा अपने सुख और दुःख का कारण मान लिया है, विचार करते हुए मनुष्य ने अनेक शताब्दियाँ बिता दीं। जीवन में जो कमी है उसके लिये मनुष्य कभी किसी वस्तु को दोषी ठहराते हैं और कभी किसी को, और कमी के कारणों को सदा अपने से बाहर खोजते हैं, किन्तु वे अपने अन्दर ही इन कारणों को कभी नहीं खोजते। पर वास्तव में अपने जीवन को सुखी या दुःखी बनाने का काम सदा से स्वयं मनुष्य ही करते आये हैं।

"ज्ञानी वही है जो आत्म-संयम करने में समर्थ

हा। विषयों का चिन्तन करने से राग की उत्पत्ति होती है, राग से इच्छा की, इच्छा से प्रबल मनोविकार की, और मनोविकार से अविवेक की उत्पत्ति होती है। अविवेक के फेर में पड़ कर स्मृति उच्चादर्श का परित्याग करती है और महामोह का उदय होता है और होते-होते प्राणी का सर्वनाश (घोर अधःपतन) हो जाता है।"

यदि कोई व्यक्ति मूर्ख, मन्थर और अविश्वसनीय है तो अपने विचारों के कारण ही ऐसा बना है। यदि कोई व्यक्ति निर्बल ओछा और अस्थिर चित्त है तो वह अपने निर्बल और ओछे विचारों के कारण ही ऐसा है। किसी भी दिन, किसी भी स्थान में, तुम नर-नारियों के मुख मण्डलों की परीक्षा करो, तो तुम तुरन्त बतला सकोगे कि उनके मनमें नित्य कैसे विचार उठा करते हैं।

यदि किसी का मुख मण्डल भाव शून्य है तो इससे यही सूचित होता है कि उसके मस्तिष्क में एक के बाद एक अर्थहीन और तुच्छ विचार ऐसे ही उठते और विलीन होते रहते हैं जैसे ग्रीष्मकाल के आकाश में मेघ। क्षण भर भी कोई विचार उसके

मस्तिष्क में न टिकता होगा, किसी भी चंचल क्षण-स्थायी विचार के लिये उसके मस्तिष्क का द्वार खुला हुआ है।

अब किसी स्फूर्तिहीन, विलासप्रिय मुख मण्डल को देखिये। है यह मनुष्य का ही दिव्य मुख मण्डल, किन्तु यह व्यसनों और वासनाओं के कारण भ्रष्ट हो गया है। इसमें भी मस्तिष्क में रहने वाले विचारों की ही झलक है।

शायद कोई कहे कि इस प्रकार मुख मण्डल द्वारा किसी की परीक्षा करने में धोखा भी हो सकता है, किन्तु मेरे विचार से धोखा होना सम्भव नहीं है। पवित्र और शुभ विचारों से चेहरे पर लम्पटता की झलक कभी नहीं आ सकती। प्रकृति से कभी भूल नहीं हो सकती। कर्मों का फल हमें कौड़ी कौड़ी भोगना पड़ता है।

क्या ही अच्छा हो यदि लोग अपनी स्थिति समझ जावें? क्या ही अच्छा हो यदि कोई प्रत्येक मनुष्य को पकड़ कर जोर से कहे—"तुम्हारे पास, हां, हां, तुम्हारे पास, पारस की बटिया है, तुम्हारे पास रसायन का रहस्य है और यदि तुम चाहो तो उसका उपयोग कर

अपने जीवन के समस्त दोषों को गुण में परिवर्तित कर सकते हो।"

पर क्या ऐसा करना सम्भव है ? अगर किसी ने ऐसा किया भी तो लोग मेरी समझ में उसे पागल ही कहेंगे। तो भी उपरोक्त वचन की सत्यता पर विचार करना चाहिये। मनुष्य में विचित्र परिवर्तन करने वाली अलौकिक शक्ति विद्यमान है पर आश्चर्य है कि उसको इसका पता नहीं।

जिस बात को नेता और उपदेशक स्वयं नहीं जानते, भला उसे साधारण जनता कैसे जान सकती है। नित्य नये उपदेश पढ़े और सुने जाते हैं, नाना प्रकार के पुण्य मार्ग मनुष्यों को सुझाये जाते हैं, "यह करो" "वह करो" की आवाज, मन्दिरों, मण्डलों, संघों और सुधार-समितियों में बराबर सुनाई पड़ती है, किन्तु उस बहुमूल्य रत्न के विषय में, जो हमारे हृदय के अन्दर बन्द हमारे दृष्टिपात की बाट जोह रहा है हमें एक शब्द भी नहीं सुनाई पड़ता है।

आज जितना उथल-पथल मच रहा है, जितनी अशान्ति फैल रही है, उसे देख कर यही जान पड़ता है कि साधारणतया सदा दिये जाने वाले उपदेशों का

लोगों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। ऐसे समय में यदि कोई धर्म्माचार्य, यदि मनुष्यों में से कोई वीर, यह उपदेश दे कि 'घर जाओ और विचार करो" तो यह कितनी गम्भीर शिक्षा होगी ! मेरी समझ से तो इस उपदेश से महान् परिवर्तन होगा।

पर इतना ही पर्याप्त नहीं। लोगों को यह भी बतलाना होगा कि विचार कैसे करना चाहिये। विचार करने की विधि तो बड़ी स्पष्ट है। जब कोई इस विधि का चिन्तन करता है तो यह अत्यन्त सरल मालूम होती है, किन्तु इसका प्रयोग करने के समय ऐसी कठिनाइयाँ आ उपस्थित होती हैं जिनका निवारण करना कठिन है।

न जाने लोग यह कब समझेंगे कि दुःख से मुक्ति, कर्म करने से नहीं होती बल्कि आत्मा की उन्नति करने से होती है और विचार करना ही आत्मोन्नति करना है। हमारे विचार ही हमारी आत्मोन्नति के साधन हैं।

कोई भी व्यक्ति विचार द्वारा अपने को चाहे जैसा बना सकता है। विधि तो अत्यन्त सरल है, किन्तु समय के अनन्त विस्तार में इसकी गति बड़ी लम्बी है

और इससे होने वाले फल अनेक हैं। कोई भी विषय क्यों न हो, पर यदि तुम उस पर गम्भीरता से विचार करो और देर तक विचार करो तो तुम्हारे स्थूल मस्तिष्क में उसी प्रकार के विचार के लिये स्थान बन जायँगे। अब यदि वह हानिकारक, पाप युक्त, नीच विचार हैं तो उसकी दासता से छुटकारा पाने के लिये, उन 'स्थानों' को तोड़ने में तुम्हें बड़ी कठिनाई होगी। जो विचार बारम्बार तुम्हारे मस्तिक में आवेगा वह लोहे के एक दृढ़ सिक्कड़ के समान है जो तुम्हें उस वस्तु के साथ कस कर बाँध देगा जिसका तुम बारम्बार विचार करते हो। यदि तुम्हारे विचार नीच हैं तो स्वयं भी तुम अपने विचारों के समान नीच हो जाओगे। तुम किसी प्रकार भी उससे बच नहीं सकते। पर यदि तुम्हारे विचार पवित्र, उच्च और उदार हैं तो तुम स्वयं भी पवित्र, उच्च और उदार हो जाओगे। "मनुष्य स्वयं वैसा ही है जैसे उसके हृदय के विचार हैं।"

महात्मा ईशा ने कहा है:—

"धन्य हैं वे जिनका हृदय पवित्र है क्योंकि ऐसे को परमात्मा के दर्शन होते हैं।"

प्रत्येक मनुष्य के जीवन-इतिहास पर यह वाक्य सिद्धान्तरूपेण विशाल अक्षरों में लिखा जा सकता है कि "मेरा जीवन मेरे विचारों का ही फल है"।

उपरोक्त बातों को जान लेना ही सुखी होना है।

४

हमारे रचनात्मक विचार के मूल में इच्छा या लालसा का होना आवश्यक है। हम उसी के विषय में विचार करते हैं और उसी के लिये उद्योग भी करते हैं जिसके लिये हमारे मन में इच्छा या लालसा है।

इच्छा या लालसा

किन्तु प्रायः ऐसा होता है कि हमारे मन में किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये इच्छा उत्पन्न होती है, परन्तु

जब इस इच्छा की जाँच की जाती है तो वह सच्ची और बलवती नहीं ठहरती। इसी प्रकार हम समझ लेते हैं कि हम किसी आदर्श की प्राप्ति के लिये उद्योग कर रहे हैं, पर जाँच करने पर इन उद्योगों में लगन का अभाव दृष्टिगोचर होता है और वे इतने थोथे होते हैं कि उनको छोड़ देने में हमें विशेष हिचक नहीं होती। वास्तव में इच्छा तो अवश्य रहती है पर उसमें लगन का अभाव रहता है। ऐसी इच्छा जीवन-निर्माण में सहायक नहीं होती। ऐसी इच्छा तो मन की एक तरंग मात्र है और वह जितनी जल्दी उत्पन्न होती है, उतनी ही जल्दी नष्ट भी हो जाती है। ऐसा कहने से यह कदापि अभिप्राय नहीं है कि ऐसी इच्छा या विचारणा से कुछ हानि नहीं होती। मेरी दृष्टि में इसके विपरीत इस प्रकार की इच्छा या विचारणा से बड़ी शक्ति क्षीण होती है और इसका प्रभाव स्वभाव पर बड़ा अनिष्टकारी होता है। यदि हम दृढ़ मानसिक शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, यदि हम संसार में सार-हीन और अकर्मण्य जीवन न बिता कर उत्तम कार्य्य करने के लिये शक्ति-सम्पन्न होना चाहते हैं, तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम क्षणिक भावनाओं को, तुच्छ और

अस्पष्ट इच्छाओं को और लक्ष्यहीन विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान ही न दें।

प्रत्येक ऐसी इच्छा से जो हमारे मन में, हमारे मोह के कारण कुछ समय तक रहती है और फिर अपने ही समान दूसरी इच्छा के लिये स्थान रिक्त कर नष्ट हो जाती है, हमारी शक्ति और मनस्फूर्ति का नाश होता है। चाहे सप्ताह भर हो, चाहे महीने भर हो और चाहे साल भर हो पर जितना ही अधिक हमारे मन में ऐसी अधूरी इच्छा टिकेगी उतना ही अधिक हमारी शक्ति का ह्रास होगा और यदि हमारे मन में ऐसी इच्छायें सदा आती रहें तो अन्त में किसी बात पर चित्त को एकाग्र करने की या सफलतापूर्वक किसी लक्ष्य को प्राप्त करने की हमारी शक्ति पूर्णतया नष्ट हो जावेगी।

"जिसके मन में स्थिरता नहीं, वह वायु-विक्षोभित सिन्धु-तरङ्ग के समान लक्ष्यहीन रहता है—जिसका मन डावाँडोल है उसके किसी भी कार्य्य में दृढ़ता नहीं होती। ऐसे मनुष्य को यह कदापि न समझना चाहिये कि भगवान् उसकी इच्छा पूरी करेंगे।"

जिस हृदय में आज एक इच्छा है और कल दूसरी,

उसको ही डावाँडोल कहते हैं। ऐसा प्राणी, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अपनी ही इच्छा से, एक बिना डाँड़े पतवार की नौकाके समान हो जाता है जो संसार-सिन्धु के क्षुब्ध वक्षस्थल पर लक्ष्य-भ्रष्ट होकर बहती है और जिसे पवन का प्रत्येक झोंका जिधर चाहे उधर जा फेंकता है। ऐसा व्यक्ति यह कभी न सोचे कि उसे किसी वस्तु की प्राप्ति हो सकती है।

एक प्रकार की इच्छा वह है जो निराशा-पूर्ण होती है। ऐसी इच्छा सत्य हो सकती है, गम्भीर हो सकती है, पर उसके सङ्ग निराशा लिपटी रहती है।

थोड़े दिन पूर्व मुझे एक ऐसे व्यक्ति से बातचीत करने का मौका मिला था जो एक वस्तु-विशेष के लिये अन्तःकरण से कामना करता था। उसकी यह धारणा थी कि यदि वह वस्तु उसको प्राप्त हो जाती तो उसका जीवन पूर्णतया सम्पन्न हो जाता। पर उसे उस नियम में विश्वास नहीं था, जिसकी सहायता से उसे वह वस्तु प्राप्त हो जाती। इस प्रकार उसकी इच्छा से घोर निराशा लिपटी हुई थी और वह दुःखी होकर कहता था कि "कहीं हाय हाय करने से चन्द्रमा मिल सकता है?" अर्थात् जो वस्तु मिल ही नहीं सकती

उसके लिये हाय-हाय करना वृथा है। ऐसी इच्छा कभी फलवती नहीं हो सकती, क्योंकि विश्वासहीनता उसको शक्तिविहीन बना देती है और अभीष्ट वस्तु के लिये लालायित होना और घोर प्रयत्न करना असम्भव हो जाता है। मेरा यह कहना कदापि नहीं है कि "आंख बन्द कर लो, मुँह फैला दो और बस तब देखो ईश्वर क्या भेजता है।" कदापि नहीं। किसी वस्तु की इच्छा करने से मेरा तात्पर्य यह है कि जीवन को विशेष उपयोगी बनाने के लिये, उसमें अधिकाधिक सुयोग और सुख पाने के लिये उत्कण्ठित होना। किसी वस्तु की इच्छा होने से हमारा मतलब है— हृदय का किसी अधिक उच्च और उत्तम वस्तु की ओर अग्रसर होना, तन मन से किसी आदर्श की प्राप्ति के लिए व्याकुल होना। मन में ऐसी इच्छा होने पर भी क्या तुम अकर्मण्य बैठे रह सकते हो? तुम्हारा तो समस्त जीवन ही कर्ममय हो जावेगा। यह निश्चित है। तुम अपने समस्त साधनों का और अपनी समस्त दिमागी शक्तियों का उपयोग करने के लिये प्रेरित होगे। सुस्त बैठे हुए, बिना प्रयत्न किये ही, सुख पाने की आशा के बदले तुम कमर कस कर काम में लग जाओगे। यह

निश्चय जानो कि तुम असफल न होगे। वास्तव में तुम असफल हो नहीं सकते।

मुझसे प्रश्न किया जाता है कि यदि हम किसी ऐसी वस्तु की इच्छा करने लग जायँ जो हमारे लिये वास्तव में कल्याणकारी न हो? तो मेरा कहना है कि पहले अपनी वांछित वस्तु को प्राप्त कर लो, तब अनुभव द्वारा ही यह जानो कि वह वस्तु वास्तव में कल्याणकारी है या नहीं। यही इस बात के जानने की सर्वोत्तम विधि है कि तुम्हारे लिये वास्तव में कल्याणकारी क्या है? यदि तुम्हारी वांछित वस्तु तुम्हें न मिली और तुम्हारी इच्छा सत्य और हार्दिक थी तो सदा यही सोचते रहोगे कि "हाय, यदि वही एक वांछित वस्तु मुझे मिल जाती तो मेरा जीवन सुखी और सफल हो जाता।"

मान लो एक व्यक्ति है जिसे धन की बड़ी इच्छा है और धन-संग्रह करना जिसका एक मात्र ध्येय है। वह संसार की सम्पत्ति के लिये लालायित है और वह इसीलिये कि वह औरों की अपेक्षा अधिक धनी हो। अन्त में धन-संग्रह करते-करते जब वह लक्षाधीश हो जाता है तो उसकी समझ में आता है कि उसकी "हाय हाय"

का वैसा फल न मिला जैसा वह चाहता था। अब उसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिस वस्तु की प्राप्ति को उसने अपना लक्ष्य बना रक्खा था, जिसकी वह प्रबल कामना करता था, वह उसके आन्तरिक सन्तोष का कारण न होकर उसके दुःख और क्लेश का कारण हुई है। तब अन्त में वह उस धन की ओर झुकेगा जिसके पाने पर प्राणी को समस्त वांछित सम्पतियाँ और सुख मिलते हैं।

इसलिये यह परमावश्यक है कि सबसे प्रथम हम ज्ञान प्राप्ति ही की इच्छा करें, जिससे हम उसी वस्तु की कामना करें जो हमारे लिये कल्याणकारी हो।

महात्मा ईसा शिक्षा देते हैं कि परमात्मा की शरण में जाओ उनके दिव्य गुणों का चिन्तन करो, उनके प्रसाद की कामना करो और तब तुम्हें सारी वस्तुएँ स्वयं ही प्राप्त हो जावेंगी।

उनकी इस शिक्षा का पालन करना हमारे लिये एक मात्र उपद्रवहीन उपाय है। भगवान की शरण में होने पर हम जिस वस्तु की चिन्ता करेंगे वह उच्च और उत्तम ही होगी। इस स्थिति में हम अपने विचार की रचनात्मक शक्ति का उपयोग उसी वस्तु की प्राप्ति के लिये करेंगे जो हमें दूसरों के लिये अधिक उपयोगी

बनावेगी और जो हमें अच्छा नागरिक और अधिक सुखी बनावेगी। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर महात्मा ईसा ने कहा था कि परमोत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये सदा लालायित रहो। उनके निम्नलिखित शब्द मानस-शक्ति की ही शिक्षा देते हैं:—

"भाइयो! यदि गुण चाहते हो, यदि यश चाहते हो तो तुम उन समस्त वस्तुओं का चिन्तन करो, जिनमें सत्य के, जिनमें शील के, जिनमें न्याय के, जिनमें पवित्रता के, जिनमें प्रेम-सौन्दर्य्य के और जिनमें उत्तम ज्ञान के तुम्हें दर्शन होते हों।"

"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"

५

आप क्या चाहते हैं ? (सारांश)

सभी धर्म एक स्वर से कहते हैं कि धर्म की विजय होती है, धर्मात्मा सुखी होता है और भगवान की कृपा से अच्छे आदमियों की सभी इच्छायें पूरी होती हैं। किन्तु सच पूछिये तो इन वाक्यों पर हम लोग सच्चे हृदय से विश्वास नहीं करते; और यही कारण है कि हम लोग दुःखी व त्रस्त रहते हैं। दयालु दीनबन्धु सा सर्वशक्तिमान् सहायक

पाकर भी हम दीन और दुःखी बने रहें तो आश्चर्य्य की बात है। कुछ लोगों का तो ऐसा विचार है कि उदासीन और कष्टपूर्ण सांसारिक जीवन बिताने से ही आगे चलकर सत्य-सुख की प्राप्ति होती है और जीवन में पूर्णता आती है। ऐसे लोग दारिद्र्य और दुःख को भगवान् का प्रसाद मानते हैं और सुख तथा सम्पत्ति को कल्याण मार्ग का विघ्न समझते हैं। वे समझते हैं कि सांसारिक सुख, सम्पत्ति और समृद्धि का परित्याग करने से ही मनुष्य ईश्वर के सामीप्य की प्राप्ति कर सकता है। पर ऐसा समझना भूल है। यदि शरीर रोगों का घर बना हो, पेट में चूहे कूद रहे हों, शिक्षा, कला, प्रेम, मित्रता और साहचर्य्य का अभाव हो, कर्म में प्रवृत्ति होते हुए भी जीवन अकर्मण्य बना लिया गया हो तो हमारे मन में शान्ति कैसे हो सकती है और जब मन ही शान्त नहीं तब हम जीवन को पूर्ण और दिव्य कैसे बना सकते हैं? इसलिये हमें सुखी और समृद्ध बनने का सर्वदा प्रयत्न करना चाहिये। निराशा, उदासीनता और अकर्मण्यता को पास न फटकने देना चाहिये।

अब देखिये कि आप कैसा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं? आपके जीवन में किस बात की कमी है?

सत्य, स्फूर्तिमय, सुखी और सफल जीवन व्यतीत करने के लिये आपको किस बात की आवश्यकता है ? क्या समाज का एक शक्तिशाली, उपयोगी और प्रफुल्ल-चित्त सदस्य बनने से आपके जीवन की आवश्यकता पूरी हो जावेगी ? इसमें सन्देह नहीं कि अवश्य पूरी हो जावेगी। तो फिर बाकी क्या रहा ? शक्तिशाली, उपयोगी और प्रसन्न तो आप निश्चय ही हो सकते हैं। ईश्वर किसी का पक्षपात नहीं करता। उसकी कृपा से सूर्य्य का प्रकाश अच्छे और बुरे प्राणियों को समान मात्रा में मिलता है; और मेघ का शीतल जल भी पापी और पुण्यात्माओं को समान भाव से मिलता है। सारांश यह कि स्वयं ईश्वर द्वारा प्रदत्त सभी वस्तुएँ सबको यथेच्छ मिलती हैं। सूर्य्य का प्रकाश झोपड़े और राज-महल पर समान पड़ता है; वर्षा का जल भी गरीब और अमीर सभी के यहाँ समान गिरता है। ईश्वर अपनी तरफ से सभी को समान दृष्टि से देखता है। असमानता मनुष्य के विकृत मस्तिष्क की उपज है। "हम अमुक गुण के अधिकारी नहीं है" ऐसा भाव काल्पनिक है; उसका कोई सत्य आधार नहीं है।

आप स्थिरचित्त होकर इस बात का पता लगाइये

कि अपने जीवन को सम्पन्न और पूर्ण बनाने के लिये आपको किस बात की आवश्यकता है ? निश्चय जानिये कि आपकी आवश्यकता, चाहे वह कुछ भी हो, अवश्य पूरी होगी। तुरन्त ईश्वर को धन्यवाद देकर दृढ़ विश्वास कर लीजिये कि वांछित गुण आप में आ गया है। बस, आनन्दपूर्वक उपरोक्त विश्वास को अटल रखते हुए कार्य्यक्षेत्र में आगे बढ़िये। थोड़े ही समय में अनायास ही वह गुण आपके जीवन, व्यवहारिक जीवन का अंग बना हुआ दीख पड़ेगा।

उपरोक्त दृष्टि से विचार करने पर आप अपने को सभी गुणों और विशेषताओं का अधिकारी पावेंगे। जब तक आप अपने को हठात् पतित नहीं समझने लगते, तब तक आप कदापि पतित नहीं हैं। यदि आप नीचता और दरिद्रता को जान बूझ कर नहीं अपनाते तो आप नीच और दरिद्र नहीं हो सकते; क्योंकि आपको सुखी उच्च और सम्पन्न रहने का स्वाभाविक अधिकार है।

आनन्द और समृद्धि का अभाव होना न तो ईश्वर-भक्ति का द्योतक है और न ईश्वर की कृपा का। वह द्योतक है केवल आपकी अनुदार विचार-धारा का, केवल आपकी अनुचित कल्पना का। आपके विचार ही आपको

पतित और आनन्दहीन बनाते हैं। छोड़िये ऐसे विचारों को। अपने जीवन में ज्ञान, शक्ति, आनन्द, शान्ति, समृद्धि, सौख्य और सफलता का तत्तत्सम्बन्धी विचारों द्वारा आवाहन कीजिये। निराशा और निर्बलता के विचारों को मन में स्थान ही न दीजिये। इस प्रकार आप समृद्ध बनिये और सत्य को समझिये। बस फिर तो आपका कल्याण ही कल्याण है।

६

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे जीवन को सुखी या दुःखी बनाने में परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है। तो भी इस बात पर दो भिन्न दृष्टि-विन्दुओं से विचार किया जा सकता है। कुछ लोग ऐसे हैं जो समझते हैं कि, वे स्वयं तथा अन्य व्यक्ति भी परिस्थितियों के शिकार हैं। जब वे अपने चारों ओर निर्धन मनुष्यों को और उनके गन्दे टूटे-फूटे झोपड़ों को देखते हैं,

विचार और परिस्थिति

जब वे लोगों को मदिरा पीते, तम्बाकू पीते, जूआ खेलते तथा नाना प्रकार के व्यसनों में पड़े देखते हैं और जब वे ऐसे पतनोन्मुख व्यक्ति को नाना प्रकार के निन्द्यस्थानों में उपस्थित पाते हैं तो वे इन लोगों के पतन का सारा दोष परिस्थितियों के माथे मढ़ देते हैं। "भला ऐसी परिस्थिति में किसी का जीवन कैसे अच्छा रह सकता है? वह जिस सड़क पर रहता है उसे देखिये। उसे जिन लोगों के बीच में रहना पड़ता है उन्हें देखिये। वह जिस मकान में रहता है उसे देखिये। ऐसी खराब परिस्थिति में पड़कर यदि कोई अच्छा जीवन व्यतीत करना चाहे तो भी कैसे करे?"—ऐसा कहते हुए मैंने एक व्यक्ति को कुछ ही दिनों पूर्व सुना था। ऐसा कहने वाले यह भूल जाते हैं कि उस मनुष्य ने स्वयं ही उस परिस्थिति में रहना पसन्द किया है, उसने स्वयं ही उस परिस्थिति को अपनाया है। कुसंगति, मलिनता और निर्धनता उसकी परिस्थिति के फल नहीं हैं। इसके विपरीत उसकी परिस्थिति ही उसके विचारों और कर्मों का फल है। किसी दिन किसी भी नगर की गलियों में घूमकर आप देखियेगा तो आपको इस बात की सत्यता तुरन्त प्रमाणित हो जायगी। आप देखते हैं कि अमुक व्यक्ति शराबी

है। अव यदि वह मदिरा पीना छोड़ दे और बुरी संगति छोड़ दे तो क्या होगा? वह प्रातःकाल नित्य अपने काम पर जायगा तो उसका चित्त स्वस्थ रहेगा, उसके शरीर में वल, हृदय में उत्साह और मन में दृढ़ता रहेगी। सप्ताह भर काम करने के बाद जब वह तनख्वाह पावेगा तो वह अपनी स्त्री और बच्चों के लिये अन्न, वस्त्र और अन्य सुखदायिनी सामग्रियाँ खरीदेगा। अव वतलाइये कि परिस्थिति की शक्ति कहाँ रही? थोड़े ही समय में उसकी स्थिति आपको यह वतला देगी कि वह परिस्थिति के वन्धन और सीमा के वाहर है। अव उसे आप स्वच्छ, शक्तिशाली, स्वतंत्र, सुखी और श्रमी पावेंगे और वह अपने पुराने गन्दे स्थान और बुरे मित्रों को छोड़कर चलता वनेगा। साथ-ही-साथ उसकी परिस्थिति भी अनायास उसके स्वभाव और नवीन जीवन के अनुकूल हो जावेगी। इस प्रकार अपने पर विजय प्राप्त करने के साथ ही उसने अपनी परिस्थिति पर भी विजय प्राप्त कर ली।

कोई स्वच्छ व्यक्ति मलिन वातावरण में, कोई सदाचारी व्यक्ति मद्यपान के वातावरण में और कोई परिश्रमी सुशील और सच्चा व्यक्ति निन्दनीय, गन्दे और अधःपतन

करने वाले वातावरण में रह ही नहीं सकता। ऐसा होना नितान्त असम्भव है। यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति को जो अभी अपनी परिस्थिति को बदलने के लिये स्वयं तैयार नहीं हैं, उसकी वर्तमान परिस्थिति से बाहर ले जाना चाहें तो ऐसा कर सकते हैं। पर नतीजा क्या होगा ? नतीजा यही होगा कि वह अपने संग अपना वातावरण भी लेता जावेगा और वह जहाँ जावेगा वहाँ भी अपने रूप के अनुकूल ही वातावरण की सृष्टि करना प्रारम्भ कर देगा।

इसलिये पहले स्वयं आदमी ही को बदलना चाहिये, वातावरण तो आपही बदल जायँगे।

इस वातावरण-समस्या का दूसरा पहलू भी है जिसपर हमें विचार करना चाहिये। कभी-कभी हमें ऐसे शिक्षित व्यक्ति भी अपने वातावरण की शिकायत करते हुए मिलते हैं जिनके कार्य्यक्षेत्र अच्छे हैं, जिनके मित्र उदार हैं और जिनको अनेक सुविधायें प्राप्त हैं। तो भी वे समझते हैं कि वे जिस स्थान के योग्य हैं, वह स्थान उन्हें नहीं मिला है, उनका वातावरण उनकी इच्छा अनुकूल नहीं है, उनको अपने अनुकूल काम नहीं मिला है और इसीलिये वे उसे नापसन्द करते हैं। वे

समझते हैं कि वातावरण के ठीक न होने से वे जिस सामाजिक, आर्थिक और आत्मिक उन्नति की आशा करते थे और जिसे वे अभी भी करना चाहते हैं उसे वे नहीं कर रहे हैं। ऐसे ही एक व्यक्ति का पत्र एक दिन हमें मिला जिसमें लिखा था, "और लोगों को तो जीवन में सफलता मिली है, उनकी उन्नति हुई है, उनको अच्छे-अच्छे अवसर भी मिले हैं और वे सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं फिर न जाने मैं ही अभागा क्यों? वर्षों से मैं अपना वर्तमान् कार्य्य करता चला आ रहा हूँ पर यह काम मुझे पसन्द नहीं है।"

"अपना काम मुझे पसन्द नहीं है"—बस इसीमें इस व्यक्ति की असफलता का रहस्य विद्यमान है। उत्तर लिखकर हमने इस व्यक्ति को बतलाया कि किस प्रकार उसको अपने वर्तमान काम में ही शक्ति और लाभ का मार्ग दिखाने वाली अनेक सुन्दर सुविधायें प्राप्त हैं। हमने लिखा "अपने वातावरण को अनुकूल न समझने के कारण ही अभी तक तुमको अपने जीवन में बाधाओं का सामना करना पड़ा है। अपने काम से घृणा मत करो, उस काम से सम्बन्ध रखने वाली बातों से घृणा मत करो और अपने नित्य के

जीवन से भी घृणा मत करो। इसके बदले नित्य एकाग्रचित्र होकर तुम अपनी आत्मपरीक्षा करना प्रारम्भ कर दो और इस आत्मपरीक्षा का उद्देश्य यही रक्खो कि तुम्हें अपने उसी काम में, जिससे तुम घृणा करते आये हो, तुम्हें कोई ऐसी बात मिल जावे जो तुम्हे अच्छी लगे।"

इस व्यक्ति ने हमारे परामर्श को स्वीकार किया और कटिबद्ध होकर तदनुसार ही काम भी किया। थोड़े ही दिनों में आश्चर्य-जनक लाभ हुआ। सुन्दर सौभाग्य का उदय हुआ। जिस काम को वह अप्रिय समझता था उसीमें प्रीति रखने के कारण अब उसके जीवन में, आनन्द देने वाली अनेक बातों का प्रादुर्भाव हुआ। वातावरण की विरुद्धता न जाने सहसा कहाँ विलीन हो गई। अनायास ही उसको अपने मित्रों और साथियों में ऐसे सुन्दर गुण दिखलाई पड़ने लगे, जो उसको पहले, बिलकुल अज्ञात थे। उसे अनायास ही सुख और शान्ति देने वाली सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं। उसको अपने उसी काम में, अपनी समस्त कामनाओं के पूर्ण होने का खुला हुआ मार्ग दिखलाई देने लगा। इस व्यक्ति ने अपने अन्तर्जगत् में परिवर्तन

किया, और बस, फिर वातावरण के अनुकूल होने में तनिक भी देर न हुई। उसने हमारे पास लिख भेजा। अब तो एक दम नये साँचे में ढल गया हूँ। आपकी सलाह मिलने के पहिले मुझे जिस वातावरण में अन्धकार, दुःख और असफलता के अतिरिक्त कुछ भी दिखलाई न पड़ता था, उसी वातावरण में आज मुझे सुख, आनन्द और सौन्दर्य्य का अनुभव हो रहा है; पर विचार करने की बात है कि इस परिणाम का आधार उस व्यक्ति का अन्तःकरण था, न कि उसका वातावरण।

निश्चय जानिये कि यदि हम अपने वर्तमान वातावरण में उन्नति नहीं कर सकते तो हम किसी अन्य वातावरण में भी नहीं कर सकते। बहुत से लोगों का ऐसा प्रायः अनुभव हुआ है और हमारा भी ऐसा अनेक बार अनुभव हुआ है कि वांछित सुख और सफलता, उसी काम में, उसी वातावरण में विद्यमान थी, जिससे छुटकारा पाने की कोशिश की जाती थी। वांछित सुख और सफलता सदा हमारे मार्ग ही में पड़ी थी; किन्तु हमको पता न था, हमारी दृष्टि उधर न पड़ी थी। जो तुम्हारी वर्तमान स्थिति है उसीमें

तुम्हें सुख मिल सकता है। जो काम तुम कर रहे हो उसीमें तुम्हें सफलता भी मिल सकती है। इसलिये सच्चे और प्रबल परिश्रम से अपने वर्तमान काम को ही उत्तम बनाने का प्रयत्न करो। ऐसा करने से निश्चय ही तुमको सुख और सफलता की प्राप्ति होगी। मन पर विजय प्राप्त करने से सभी कामनाएं अनायास पूर्ण होती हैं। कटिबद्ध होकर काम करने वाले को हर एक क्षण अवसर मिलते रहते हैं।

उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मीः।

७

पारस

बहुत प्राचीन काल से लोगों में ऐसा विश्वास चला आ रहा है कि ऐसी कोई वस्तु है, जो मिल सकती है और जिसके मिलने पर मनुष्य को ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह लोहे का सोना बना सकता है और अनायास ही अपने दुःखी और भद्दे जीवन को सुखमय और सुन्दर बना सकता है। भिन्न-भिन्न मार्ग से उसे खोजते हुए बहुतों ने अपना समस्त

जीवन ही व्यतीत कर डाला और बहुत से लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया कि हमें वह अद्भुत रहस्य मिल भी गया है। सच पूछिये तो संसार के इतिहास में सदा से ऐसे लोग रहे हैं, जिन्होंने इस खोज में सफल होने की घोषणा की है और जिनकी घोषणा से आकृष्ट होकर लोगों ने उनका अनुगमन भी किया है; किन्तु अन्त में लोगों को हताश होकर लौटना पड़ा है। बारम्बार हताश होने पर लोग ऊब गये हैं और उन्होंने खोज करना ही बन्द कर दिया है। उन्होंने समझ लिया कि पारस नाम की कोई वस्तु न थी और न है; पारस के अस्तित्व की बात झूठी और किसी पागल की कल्पना की उपज है।

लोगों की गलती इसीमें हुई है कि लोगों ने पारस को अपने से बाहर की कोई चीज समझ कर उसकी खोज की है। लोगों ने यह समझ रक्खा है कि पारस कोई ऐसी स्थूल वस्तु है, जिसे हम छू सकते हैं, उठा सकते हैं और जहाँ चाहें वहाँ ले जा सकते हैं। अन्य लोगों ने उसे कोई अपने से बाहर की शक्ति मान ली है, जिससे आत्मा का सम्बन्ध होना आवश्यक समझा गया है। जब हम लोग किसी वस्तु को खोज निकालने के लिये इधर-उधर निगाह दौड़ाने लगते हैं

तो उसे ला मिलानेवाले भी वहुत से मिल जाते हैं। यही कारण है कि इतने संप्रदायों और उपसंप्रदायों की उत्पत्ति हुई है। यही कारण है किह में चारों ओर ऐसे धूर्त और उपदेशक दिखाई पड़ते हैं, जो दक्षिणा लेकर इस महान् रहस्य को वतलाने के लिये तैयार रहते हैं। आश्चर्य्य तो यह है कि दक्षिणा देने वाले भी वहुत मिल जाते हैं जो यह नहीं समझते कि यदि गुरुजी को पारस का पता होता तो वे दक्षिणा पाने को इच्छा क्यों करते? अन्वेषक तो सच्चे हृदय से उस वस्तुको ढूँढ़ते हैं, जिसके पाने से वे दुःख से छुटकारा पा जावें; पर दुःख इस वात का है कि वे जिधर ढूँढ़ना चाहिये, उधर नहीं ढूढ़ते।

इस प्रकार अन्वेषक वारम्वार झूठे मार्गों का अवलम्बन करते हैं, वार-वार दक्षिणा देकर ठगे जाते हैं और वार-वार असफल होते हैं। पर यह सव होते हुए भी हम दावे के साथ कह सकते हैं कि पारस अर्थात् वह अद्भुत शक्ति जो सारे भ्रमों को दूर कर देती है और जो मलिन जीवन को उज्ज्वल वना सकती है, वास्तव में विद्यमान है और वह सवको मिल सकती है। वस, शर्त यही है कि उसको खोजने के लिये ठीक मार्ग का अवलम्वन किया जाय अर्थात् उसे वाहर न खोजकर अपने

मन और हृदय में ही खोजा जाय; क्योंकि यह शक्ति मनुष्य को अपने विचारों में ही मिलेगी।

हम विचार-शक्ति की महत्ता पर बहुत कुछ पहले लिख और कह आये हैं पर फिर भी हमें सन्तोष नहीं होता। इस विषय पर कितना ही क्यों न लिखा गया हो और कितने ही जोरदार शब्दों में क्यों न लिखा गया हो, पर सब थोड़ा है।

जब हम यह देखते हैं कि प्रत्येक मनुष्य में यह महाशक्ति विद्यमान है पर उसका लोगों को ज्ञान नहीं है, जब हम देखते हैं कि अपनी ही हथेली में पड़े हुए इस महारत्न का लोगों को पता नहीं है, तो बारम्बार उनसे कहने की इच्छा होती है कि "सज्जनो, इस परिवर्तनशील जगत में खोजना छोड़ दो, क्योंकि जिस वस्तु को तुम खोज रहे हो वह तो तुम्हें स्वयं प्राप्त है; वह वस्तु तो तुम्हारी विचार-शक्ति में ही वर्तमान है।"

हमको यह मन में भली प्रकार बैठा लेना चाहिये कि हमारी वर्तमान परिस्थिति के निर्माता हमारे भूतकाल के और वर्तमानकाल के विचार ही हैं। बस, इतना ही समझ लेना उस महाशक्ति के पाने के मार्ग पर अग्रसर होना है।

विचारों में ही वह महाशक्ति निहित है जिसके

सहारे भगवान् ने इस संसार को बनाया है। प्रत्येक निर्मित वस्तु का और प्रत्येक निर्माणकारी शब्द का मूल विचार ही है। संसार की प्रत्येक वस्तु का जन्म विचारों से ही हुआ है। सुन्दर-सुन्दर भवन शिलिपयों के विचार के ही फल हैं। जंगलों का वर्तमान रूप वन-रक्षकों के विचार द्वारा ही निर्दिष्ट हुआ है, और इसी प्रकार वह सुरम्य वाटिका जिसमें सुन्दर टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियाँ बनी हुई हैं, जिसमें कोमल-कोमल घासों से आच्छादित स्थान दिखलाई पड़ते हैं, जिसमें नाना प्रकार के सुन्दर फूल खिल रहे हैं और जिसमें उज्ज्वल जल के फव्वारे छूट रहे हैं, किसी माली के विचारों का ही फल है। यहाँ तक कि हमारे कपड़े और टेबुल-कुर्सी आदि सामान भी पहले स्वयं हमारे मन में या किसी दर्जी और बढ़ई के मन में विचार रूप में उत्पन्न हुए थे। पहले इन सब वस्तुओं का पूर्ण चित्र हमारे मनमें (विचार द्वारा) उत्पन्न होता है और बस फिर शीघ्र ही किसी के हाथ उस चित्र को हमारे सामने स्थूल रूप में खड़ा कर देते हैं।

आप शायद यह कहें कि यह सब तो हमने मान लिया, पर हम अपने जीवन की परिस्थितियों को क्या करें? इन परिस्थितियों के कारण जो भय उत्पन्न होते

हैं, जो विपत्तियाँ आती हैं, जो निर्धनता भोगनी पड़ती है, जो बाधाएँ आ उपस्थित होती हैं, जिन झंझटों और चिन्ताओं का सामना करना पड़ता है, उनको हम कैसे दूर करें? उत्तर यह है कि ये सब बातें भी आपके विचारों के ही फल हैं। बारम्बार जिन विचारों को आपने अपने मस्तिष्क में स्थान दिया है, उन्हीं विचारों के ये फल हैं। चाहे हमको इसका ज्ञान हो चाहे न हो, पर बात यह है कि हमारा जीवन हमारे नित्य के विचारों का ही प्रत्यक्ष रूप है। उदाहरण के लिये ऐसे लोग मिलेंगे जो बीमारी की आशंका करते-करते वस्तुतः बीमार हो गये हैं। वर्षा से बचें, नहीं तो भींग जायँगे और जुकाम हो जायगा। हवा से बचें, नहीं तो नुकसान होगा। पूरब से आने वाली हवा से जाड़ा लगता है, उत्तरी हवा बरदाश्त नहीं होती, दक्षिणी हवा से सुस्ती आती है और पश्चिमी हवा से अवश्य पानी बरसेगा। ऐसे ही विचार इन बीमार पड़ने वालों के मन में आते रहते हैं। यदि धूप निकली तो वे खिड़कियाँ बन्दकर अथवा पर्दे गिराकर उससे बचने की कोशिश करेंगे। वे सोचते हैं कि "यह मत खाओ" "वह मत खाओ"; और यह सब इसीलिये कि कहां जी

न खराव हो जावे। वे व्यायाम से और आमोद-प्रमोद से भी डरते हैं कि कहीं नुकसान न पहुँचे। हमेशा अनिष्ट परिणाम से वचने के लिये वे कुछ-न-कुछ किया ही करते हैं। इसी प्रकार आशंकामूलक विचारों में वर्षों वीत जाते हैं और नतीजा यह होता है कि वे वस्तुतः रोगाक्रान्त हो जाते हैं। यदि रोगाक्रान्त न भी हुए तो कम-से-कम उनका मन स्फूर्ति-हीन, उनका शरीर क्षीण और उनका हृदय उत्साह-हीन तो अवश्य हो जाता है।

अव यदि यही लोग भिन्न रीति से विचार करते होते तो परिणाम भी कितना भिन्न हुआ होता। सभी के विषय में यही वात लागू होती है। स्त्री और पुरुष, दरिद्रता की वात किया करते हैं, दरिद्रता की वात सोचते रहते हैं और दरिद्रों का सा आचरण भी करते हैं और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से दरिद्रता को निमंत्रण दिया करते हैं। वस, होते-होते एक दिन दरिद्रता उनकी संगिनी वनकर सचमुच उनके भवन में आ धमकती है। इसी प्रकार कुछ लोग नित्य रोगों की, रोगों के लक्षणों की, उनसे होने वाली पीड़ाओं की, शरीर के ताप-मान की और नाड़ी की वात चीत किया करते हैं और इस प्रकार रोग को निमंत्रित किया करते हैं। वस, होते-होते

एक दिन वह रोग-राक्षस आकर, सचमुच आकर उनको सदा के लिये काबू में कर लेता है और तब यही रोगा-क्रान्त प्राणी "हाय-हाय" करते हुए, सहायता, सहानु-भूति और सान्त्वना के लिये दूसरों का मुँह ताकते हैं और ऐसा करने के लिये अपने को विवश समझते हैं। अपने ही विचारों द्वारा दुःखी बने हुए इन दया के भिखा-रियों पर दया आना तो स्वाभाविक है; क्योंकि उन्होंने अपने ही हाथों से अपने पैरों में कुलहाड़ी मारी है।

किन्तु मनुष्यों को मोह निद्रा से जगाना और आत्म-चिन्तन में लगाना बड़ा कठिन काम है। भाषणों द्वारा और लेखों द्वारा, प्रथाओं को, रूढ़ियों को, जातीय वि-श्वासों को और दृढ़ अन्धविश्वासों को हटा देना और उनके हृदय में इस महान् सत्य को स्थापित कर देना बड़ा कठिन काम है कि विचार ही सब कुछ निर्मित करने वाली महाशक्ति है। वह प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बच्चे में विराजमान है, उसके प्रयोग से हम इच्छानुसार किसी भी प्रकार के फल की उत्पत्ति कर सकते हैं, प्रत्येक प्राणी के विचार उसीके हैं अतएव उनका फल भी उसीको भो-गना पड़ता है और इस फल-प्राप्ति-क्रिया को न कोई रोक सकता है और न उसमें कोई बाधा ही पहुँचा सकता है।

आप चाहे कोई भी क्यों न हों, आपकी स्थिति चाहे कैसी भी क्यों न हो, पर पारस आपके ही हाथ में है। आप यदि चाहें तो आज ही और इसी क्षण अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को और परिस्थिति सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने के कार्य्य का श्री गणेश कर सकते हैं और निश्चयपूर्वक किन्तु धीरे-धीरे अपने जीवन की समस्त बुराइयों को उज्ज्वल गुणों में परिवर्तित होते देख सकते हैं।

किन्तु यह सब कहने का यह अर्थ नहीं है कि आपकी कमी, अज्ञानता और पीड़ायें क्षणमात्र में दूर हो जावेंगी। यदि मन में अनुचित विचारों को स्थान देकर, हमने बीस, तीस, चालीस और पचास वर्षों में एक निकम्मे, श्री हीन और दुःखमय जीवन की सृष्टि की है तो एकाएक उसके सुधर जाने की आशा कैसे की जा सकती है? बड़ा प्रयत्न करना होगा, बहुत सी आदतें छोड़नी होंगी, बहुत सी नई आदतें अपनानी होंगी और तब कहीं सुधार हो सकेगा। सम्भव है प्रयत्न करने में कई वर्ष व्यतीत हो जावें और फिर भी कुछ प्रत्यक्ष सुधार न दिखलाई पड़े। किन्तु आपको यह अवश्य मालूम होगा कि सुधार का काम क्रम-पूर्वक चल रहा है और

एक-न-एक दिन समस्त कष्ट और बाधायें दूर हो जावेंगी। आपको इसका अवश्य निश्चय हो जावेगा कि आपके हृदय में काम करने वाली विचार रूपी महाशक्ति का विरोध किसी प्रकार किया ही नहीं जा सकता। जिस शुभ लक्ष्य की प्राप्ति के लिये आप विचार और प्रयत्न कर रहे हैं वह आपको अवश्य मिलेगी। यह मत समझिये कि आपके विचारों का सम्बन्ध केवल आपके वर्तमान जीवन से है। अपने विचारों द्वारा आप जिस स्थिति की सृष्टि कर रहे हैं, उसका प्रभाव आपके भविष्य के अनेक जन्मों पर अथवा समस्त जन्मों पर पड़ेगा। जिस वृक्ष का बीजारोपण आज आप कर रहे हैं, उसके फल आपको आगे चलकर मिलेंगे। आपके विचारों द्वारा आपके जीवन का रूप निर्दिष्ट होगा। इसी भावना से प्रेरित होकर विद्वान् एमर्सन ने कहा है कि—

"मैं समस्त सृष्टि का स्वामी हूँ। सप्त लोकों का, सौर वर्ष का, वीर सीजर की भुजाओं का, विद्वान् प्लेटो के मस्तिष्क का, महात्मा ईशा के हृदय का और महाकवि शेक्सपीयर के गीत-प्रवाह का अधिपति मैं ही हूँ।"

८

सुख और शान्ति देने वाली अदृश्य शक्तियों के अन्वेषण में लगे हुए प्राणियों को विचारशक्ति, या विचार की निर्माणशक्ति के समान सरल सत्य का उपदेश देने में एक प्रकार के अनिष्ट फल की सम्भावना है। प्रत्येक प्राणी को भली प्रकार यह समझ लेना चाहिये कि वह अनिष्ट फल क्या है, जिसमें वह भूल से सुख के बदले दुःख का आवाहन न करने लगे। मनुष्य

फलप्राप्ति

की प्रत्येक शक्ति, जिसका वह उचित प्रयोग करना नहीं जानता या जिसका वह स्वार्थान्ध होकर दुरुपयोग करता है, उसके सर्वनाश का कारण हो सकती है। इसीलिये सृष्टि में अधिकांश मनुष्य अपने ही अन्दर प्रच्छन्न रहने वाली दिव्य शक्तियों के ज्ञान से वञ्चित रक्खे गये हैं। यही ठीक भी है, क्योंकि इन शक्तियों का ज्ञान होने पर सभी लोग कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही इनका प्रयोग नहीं करते—वे इनका अनुचित प्रयोग भी करते हैं।

अस्तु! इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि विचारों में महती शक्ति है, और इसी सहज शक्ति का प्रयोग कर पुरुष और स्त्री अपने जीवन को जैसा चाहे वैसा बना सकते हैं। वास्तव में नित्य ही हम अपने जीवन को किसी-न-किसी साँचे में ढालने का काम कर रहे हैं। यह सच है कि हम अपने वातावरण से, अपनी परिस्थिति से, अपने नित्य के अनुभूतियों से और समाज में विभिन्न व्यक्तियों तथा वस्तुओं से जो हमारा सम्बन्ध है, उससे पूर्णतया संतुष्ट नहीं हैं और यदि हमारा वश चले तो हम एकाएक आवश्यक परिवर्तन भी कर डालें; किन्तु ऐसा होना तभी सम्भव है जब कार्य्य कारण के

विधान को हम तोड़ सकें; पर हमें तो उलटे यही सीखना है कि कार्य्य कारण का नियम अटल है और इसी नियम का क्रियात्मक रूप देख कर हमें विचार की महती निर्माणशक्ति की सत्यता का ज्ञान हो सकता है।

कारण है तो कार्य्य अवश्य होगा अर्थात् कर्म है तो उसका फल भी अवश्य होगा।

कर्म को कोई दोषी नहीं ठहरा सकता। कर्म का फल भोगना ही पड़ता है, ऐसा समझ कर जो कर्म करेगा उसका कल्याण होगा। कर्म के फल से हम किसी प्रकार बच जावेंगे—ऐसा समझ कर जो कर्म करता है उसका अमङ्गल होता है। कर्म के ही प्रभाव से मन की शुभ भावनाएँ सुख और शान्ति का कारण बनती हैं। कर्म ही द्वारा दुर्भावनाएँ दुःख का कारण बनती हैं। कर्म की गति कहीं नहीं रुकती। सर्वत्र कर्म की छाप विद्यमान है। उचित कर्म करने पर शुभ फल की प्राप्ति अवश्य होती है। अनुचित कर्म करने पर एक-न-एक दिन उसका बदला चुकाना ही पड़ता है। कर्म क्रोध करना नहीं जानता; पर साथ-ही-साथ वह क्षमा करना भी नहीं जानता। कर्म नितान्त निष्पक्ष है। अतएव बावन तोला पाव रत्ती वही फल वह हमें देता है जो हमें

मिलना चाहिये। कर्म के फल की प्राप्ति में समय का कोई विशेष महत्व नहीं है। आज मिले या कल मिले या और कभी मिले, पर कर्म का शुभाशुभ फल मिलेगा अवश्य।

इस समय हम अपने पूर्व संचित कर्मों का ही फल भोग रहे हैं। दूसरे शब्दों में इस समय हम अपने पूर्व कृत विचारों का ही फल भोग रहे हैं, क्योंकि विचारों से ही हमारे कर्मों की उत्पत्ति होती है और विचारों और कर्मों का अलग-अलग करना असम्भव है।

यह सच है कि भूतकाल में हम बिना समझे-बूझे विचारों को अपनाते थे, यह सच है कि विचार करते समय हमको विचारों की महती शक्ति का पता न था और यह भी सच है कि हम नहीं जानते थे कि विचारों का क्या फल होगा; पर यह सब न जानने से विचारोंके परिणाम में कोई परिवर्तन न हुआ। फल तो जैसा विचार था वैसा हुआ ही।

"नाभुक्तं क्षीयते कर्म"

"पूर्व जन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते"—आदि अनेक वाक्यों से यही शिक्षा मिलती है कि जीवन का रूप हमारे कर्मों द्वारा ही निर्दिष्ट होता है। हमारे कर्मों के

जेम्स एलेन ने कहा है—

"विचाररूपी वृक्षों में कर्मरूपी बौर लगते हैं और उनसे सुख और दुःखरूपी फलों की उत्पत्ति है। मनुष्य जैसा वृक्ष लगाता है वैसा ही मीठा अथवा कडुआ फल भी उसको मिलता है।

"मनुष्य के जीवन का संगठन एक निश्चित नियम द्वारा होता है; वह कोरी कल्पना का फल नहीं है। रहस्यपूर्ण अन्तर्जगत में कार्य्य-कारण सम्बन्धी नियम का उतना ही अटल प्रभुत्व है, जितना दृश्यमान वाह्य जगत् में।

"स्वयं मनुष्य ही अपनी उन्नति करता है; स्वयं मनुष्य ही अपना सत्यानाश भी करता है। विचार रूपी शस्त्रागार में वह उन शस्त्रों की रचना करता है जो उसके नाश के कारण होते हैं। उसी शस्त्रालय में वह उन औजारों की भी सृष्टि करता है जिनके द्वारा वह अपने लिये सुख, शक्ति और शान्ति के सुन्दर महल उठा सकता है।

"वर्तमान युग में आत्मा-सम्बन्धी जिन सुन्दर शब्दों का प्रकटीकरण और प्रचार हुआ है, उनमें सबसे अधिक आनन्दवर्धक, दिव्य और श्रद्धोत्पादक यही है

कि मनुष्य ही अपने विचारों का एक मात्र स्वामी है, वही अपने चरित्र का सूत्रधार है, वही अपनी परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाला और वही अपने भाग्य का विधाता है।"

इस दशा में यह कितना आवश्यक है कि हम इस विचाररूपी महाशक्ति का उचित प्रयोग करना सीखें? धिक्कार है हमें यदि इसको हम अपने स्वार्थ-साधन में लगावें। इस शक्ति के प्रयोग से हमारी अधिकांश कामनाएँ पूरी तो अवश्य होंगी पर हमको इस बात के लिये उद्योग करना चाहिये कि हमारी भावनाएँ ऐसी हों जिनका फल अच्छा हो न कि ऐसी जिनका फल बुरा हो।

पहले तो हमें अपने पूर्व कर्मों से मुक्ति पाने का ही प्रयास करना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि यदि हमें यह मालूम हो जाय कि हमारे जीवन में कुछ बातें हमारे पूर्व विचारों और कर्मों का फल है, तो हमे कटिबद्ध होकर उस फल को पूर्णतया भोगने के लिये तैयार हो जाना चाहिये। पर वह फल भोगते समय हम और कुछ भी कर सकते हैं और वह यह कि हम उचित विचार-प्रवाह का आश्रय लेकर एक ऐसी शक्ति को संचालित

कर सकते हैं जो अभी से हमारे भविष्य के सुख और आनन्द का बीजारोपण कर दे। कार्य्य-कारण के सम्बन्ध को भली भाँति समझ लेने के बाद अब आप विचार कीजिये कि क्या आपको कोई वर्तमान कष्ट है और क्या उसके कारण का अन्वेपण करते समय आप इस निश्चय पर पहुंचे हैं कि उस कष्ट का बीजारोपण आप ही द्वारा महीनों या वर्षों पूर्व हुआ था या इतना पहले हुआ था कि आपको उसका ठीक-ठीक समय याद ही नहीं रहा? यदि ऐसा है तो यह कष्ट होते हुए भी आप अब एक दिव्य विचार का, एक शुभ विचार का, एक पवित्र विचार का, एक प्रेममय, शान्तिमय और आनन्दमय विचार का बीजारोपण कीजिये और तब आप देखेंगे कि इस नये मंगलात्मक बीज से एक ऐसे कल्याण और आनन्दरूपी फल देने वाले बृक्ष की उत्पत्ति होगी, जिसके फल को खाते हुए आप अपने वर्तमान कष्ट को धैर्य पूर्वक सहने में समर्थ होंगे और होते-होते आपके कष्ट का अनायास ही सदा के लिये लोप हो जायगा।

क्या आप ऐसा स्वस्थ, सुन्दर और सुखी जीवन व्यतीत करना चाहते हैं जो प्रेममय या कर्ममय हो

अथवा जो उपयोगी और सफल हो ? क्या आप शक्ति और ज्ञान से सम्पन्न होकर लोगों का भला करते हुए उनके विश्वासपात्र बनना चाहते हैं ? यदि हाँ, तो आप अपने लक्ष्य का दिन-रात चिन्तन कीजिये; दिव्य, पवित्र और स्वार्थहीन विचारों द्वारा उसका निरन्तर चिन्तन कीजिये और उसपर अटल दृष्टि रखते हुए तथा धैर्य्य-पूर्वक अपने विचारों के कार्य्यरूप में परिणत होने की प्रतीक्षा करते हुए, आप अपने को उस लक्ष्य की प्राप्ति के योग्य बनाने का प्रबल प्रयत्न करते रहिये। बस, निश्चय जानिये एक-न-एक दिन आपका भाग्य खुलेगा और आपकी प्रिय मनोकामना पूरी होगी। आपका काम इतना ही है कि आप एकाग्र चित्त होकर अपने को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के योग्य बनावें। आप उसका चिन्तन करें, उसके लिये तैयारी करें, प्रयत्न करें, उसके पाने की अभिलाषा करें और कृतज्ञता प्रकाशन करते रहें। कृतज्ञता प्रकाशन करते रहना आवश्यक है; क्योंकि आप जिस वस्तु की उग्र कामना करते हैं, वह वास्तव में चली आरही है और उसकी गति आप ही पर निर्भर है; आपके विचारों में और कामों में जितनी ही अधिक शक्ति होगी उतने ही वेग से आपकी प्रिय वस्तु आपको

आ मिलेगी। उसका आना तो सदा जारी ही है, इसलिये एक तरह से वह आपको प्राप्त भी हो गयी है।

अस्तु! "हमारी कामना तो पूर्णप्राय है" ऐसा समझते हुए आपको ईश्वर के प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन करते रहना चाहिये; क्योंकि समय का बन्धन आत्मा के लिये है ही नहीं। आत्मा के लिये (और आत्मा ही मनुष्य का सत्य रूप है) तो समस्त पदार्थ सनातन से ही अन्तर्निहित (प्राप्त) हैं। सभी सम्भव गुण आप में सदा विद्यमान हैं। जितना ही आप इस बात में विश्वास करेंगे, जितना ही आप इसमें अनुरक्त होंगे, जितना ही आप ईश्वर के प्रति शुभ गुणों की प्राप्ति के लिये कृतज्ञ बनेंगे, उतना ही शीघ्र आप अपने नित्य के सांसारिक जीवन में इन गुणों का अनुभव करेंगे। आवश्यक विलम्ब भले ही हो, पर उचित समय पर आपकी उद्योगात्मक सभी सत्य कामनाएँ अवश्य पूरी होंगी।

इसीलिये हमें विद्वान गेथे की यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि—

"अपनी अभिलाषाओं से सावधान रहिये; क्योंकि आपकी अभिलाषा अच्छी हो या बुरी, पर उसका फल आपको अवश्य भोगना पड़ेगा।"

नदी को कौन रोक सकता है अथवा उदीयमान भगवान भास्कर की निश्चित गति को ही कौन रोक सकता है ? स्वस्थ और सुसंयत आत्मा अपने योग्य वांछित वस्तु की प्राप्ति कर ही लेता है। मूर्ख लोग भले ही "भाग्य भाग्य" चिल्लाया करें, पर भाग्य का अधिपति तो वही है जिसकी दृढ़ इच्छा कभी विचलित नहीं होती, जो तुच्छ-से-तुच्छ काम भी इसीलिये करता है, यहाँ तक कि विश्राम भी इसीलिये लेता है कि लक्ष्य-प्राप्ति में सहायता मिले। कहाँ तक कहें ऐसी दृढ़ इच्छा वाले प्राणी की प्रतीक्षा में मृत्यु भी शान्त भाव से घंटे भर खड़ी रह जाती है।"

* समाप्त *